महामना पंडित मदन मोहन मालवीय के शिक्षा-दर्शन की प्रासंगिकता

मृदुला राय*

जिस विलक्षण दूरदर्शिता, शक्ति एवं सूझ से श्री मदनमोहन मालवीय ने शिक्षा की योजना एवं विश्वविद्यालय की परियोजना तैयार की थी, वह किसी एक महान शिक्षाशास्त्री के ही बूते का काम है। अतः यदि शिक्षा केवल विद्यालय एवं विश्वविद्यालय में पढ़ाई जाने वाली चीज़ है तो उसका पाठ्यक्रम तथा उसकी विधि ज़रूर मालवीय जी ने तैयार नहीं की। लेकिन उस स्थान की नींव डाली, भवन तैयार किया, वातावरण, सुविधाएँ संयोजित और प्रदान की, जिसके फलस्वरूप उसमें शिक्षा-दीक्षा लेने वाले अपना विकास एवं ज्ञानवर्द्धन कर सकें। शिक्षाशास्त्री का काम केवल शिक्षालय में पढ़ाना एवं विधि तथा पाठ्यक्रम तैयार करना ही नहीं है, अपितु सबसे बड़ा काम तो समाज एवं राष्ट्र के लिए योजना एवं योजना को कार्यान्वित एवं फ़लीभूत करने के लिए हर प्रकार की सुविधाएँ जुटाना भी है।

मालवीय जी ने हिन्दू धर्म, जाति एवं भारत के लिए अपना सर्वस्व दे दिया। धर्म और देश की सेवा का व्रत लेकर अपने सुख और ऐश्वर्य की चिंता भुलाकर मालवीय जी ने अदम्य उत्साह से निरंतर भारत की सेवा की है। शंकराचार्य, विवेकानन्द एवं डॉ. राधाकृष्णन की भाँति उन्होंने दार्शनिक बिंदुओं के संदर्भ में अपना मत दिया। साथ ही उन्होंने ईश्वर, जगत, जीव एवं मनुष्य आदि प्रसंगों पर अपने विचार स्पष्ट रूप से प्रकट किए हैं। वे न केवल वेदान्ती थे, न केवल अद्वैत या विशिष्टाद्वैत सिद्धांत के मानने वाले थे, वे एक प्रकार से सभी सिद्धांतों को, जो उनकी अंतरात्मा स्वीकार करती थी, मानते थे। वे अनन्य हिन्दू धर्म के भक्त और उपासक थे और उनका विश्वास वेदों, स्मृतियों, भागवत, पुराणों, उपनिषदों, शैव एवं वैष्णव संप्रदायों की बातों में था। इस प्रकार वे सभी संप्रदायों की अच्छी बातों

* *असिस्टेंट प्रोफ़ेसर*, बी.एड. विभाग, सावित्री महिला डिग्री कॉलेज, तकपुरा, दर्शननगर, फ़ैज़ाबाद, उत्तर प्रदेश

में विश्वास करते थे। आइए, उनके विचारों को समझने का प्रयास करें।

दार्शनिक विचार

(1) सनातन धर्म — मालवीय जी का विश्वास सनातन धर्म में था। उन्होंने कहा है कि सनातन धर्म पृथ्वी पर सबसे पुराना और पुनीत धर्म है। यह वेद, स्मृति और पुराण से प्रतिपादित है। उनका प्रिय ग्रंथ भगवदगीता था। उन्होंने कहा कि, "मेरा विश्वास है कि संसार में भगवदगीता के समान भक्ति और सात्विक कर्म की शिक्षा देने वाली कोई दूसरी पुस्तक नहीं है। इसलिए जितना ही इसका प्रचार हो उतना ही मनुष्य जाति का उपकार होगा।" ठीक भी है क्योंकि उन्होंने अपने मृत्युपर्यंत कर्म का बाना अपनाया था। उनका विश्वास था कि, "धर्म वह है जिसमें क्रियाशीलता की प्रशंसा आर्य लोग (श्रेष्ठ जन) करते हैं (यस्तु आर्याः क्रियमाणं प्रशंसन्ति स धर्मः-आपस्तम्भ)।"[1] धर्म क्या है इस संबंध में मालवीय जी के विचार हैं — "जिसमें आत्मा की उन्नति हो तथा निःश्रेयस की सिद्धि हो वह धर्म है।" अर्थात् जिसके द्वारा व्यक्ति की आध्यात्मिक उन्नति होती है। इसके आगे भी उन्होंने कहा है कि इस संसार की यात्रा में जो नियम आदि का पालन करना पड़ता है, जिससे इहलोक और परलोक में सुख मिलता है जिससे निश्चय ही यहाँ से मुक्ति मिलती है, वह धर्म कहा जाता है। धर्म मनुष्यों द्वारा अपने में कुछ गुणों के धारण करने में होता है, जिसका प्रभाव दूसरों पर पड़ता है। मनुष्यों में गुणों के होने से वह अन्य प्राणियों के साथ अहिंसक भाव रखता है, इसलिए सभी लोग धर्म का आचरण नित्य हृदय से करो। धर्म से विमुख होकर अधर्म मत करो, नहीं तो घोर नरक में गिरोगे (विद्या रूपं धनं शौर्य कुलीनत्वमरोगिता, राज्यं स्वर्गश्च मौक्षश्च सर्व धर्सादवाप्यते)।[2]

(2) ईश्वर — सनातन धर्म के सिद्धांतों में विश्वास करते हुए मालवीय जी ने ईश्वर तथा अन्य के संबंध में अपने विचार दिए हैं। वेद, स्मृति, उपनिषद्, भागवत आदि के आधार पर उन्होंने ईश्वर को एकमेवाद्वितीयम् तथा 'आत्मा व इदमेक एकाग्र आसीत' माना है जो हम सबका पिता, सृष्टि-निर्माता, सारी पृथ्वी और सारे लोक एवं विश्व में रहने वाला है। वह ईश्वर एक ही आत्मा, पुराण, पुरुष, सत्य, स्वयं प्रकाश स्वरूप, अनंत, नित्य, अविनाशी, निरंतर सुखी, माया से निर्लिप्त, अखंड, अद्वितीय, उपाधि से रहित तथा अमर है। इस ईश्वर को मनुष्य आँखों से नहीं देख सकता, किंतु हममें से हर एक अपने मन को पवित्र कर विमल बुद्धि से ईश्वर को देख सकता है। उन्होंने ईश्वर को शिव पुराण में वर्णित 'ब्रह्मा-विष्णु-महेश', तीन रूपों में माना है जो क्रमशः सृष्टि, पालन एवं संहार के गुणों से युक्त है।

ईश्वर परमात्मा है, वह सत्य है, ज्ञानस्वरूप है और अनंत है। इसके अलावा, वह सदा रहा है और सदा रहेगा भी। वह ज्ञान, चैतन्य और आनंदस्वरूप है। उसका स्वयं शरीर नहीं है, किंतु विनाशवान शरीरों में बैठकर वह संसार की लीला कर रहा है, इसीलिए तो एक होने पर भी वह अनेक रूपों में दिखाई देता है। एक ही परमात्मा सब प्राणियों के भीतर छिपा हुआ है, सब में व्याप्त है, सब जीवों के भीतर अंतरात्मा है, वह अग्नि में, जल में, वायु में, सारे भुवन में, सभी

औषधियों में, सब वनस्पतियों में, सब जीवधारियों में व्याप्त रहा है, ऐसा कथन उपनिषद् का है जो मालवीय जी को मान्य है। गीता में कहा गया है कि 'ईश्वर सब जीवों के हृदय में है' (ईश्वर सर्व भूतानां हृदेशे तिष्ठति)। इसलिए इस ईश्वर को पाने के लिए अपने आप में देखने को कहा है तथा विद्या एवं विनय के साथ सभी प्राणियों को समान देखना चाहिए, सभी की सेवा, सभी का कल्याण करना चाहिए। मालवीय जी ने कहा है कि, 'उसकी सबसे उत्तम पूजा यही है कि हम प्राणी मात्र में ईश्वर का भाव देखें, सबसे मित्रता का भाव रखें और सबका हित चाहें।'

(3) मनुष्य तथा अन्य प्राणी — ईश्वर चेतनमय कहा गया है अर्थात् उसमें प्राण शक्ति है, तभी तो ईश्वर की वंदना में 'ऊँ प्राणः प्राणः' कहा जाता है। सभी प्राणयुक्त जीव उसी ईश्वर की रचना है, प्रत्येक जीव का एक शरीर होता है तथा दूसरा सूक्ष्म तत्व है। प्रत्येक नर-नारी का कर्तव्य है कि वह अपने धर्म का पालन करे और वेद-शास्त्र-स्मृतियों में निहित महायज्ञों को पूरा करे। इस प्रकार यज्ञों की पूर्ति में वर्णाश्रम धर्म का पालन करना चाहिए। मालवीय जी ने विभिन्न उदाहरण देकर यह तर्कसंगत सिद्ध किया है कि मनुष्य को पाप से छुड़ाने और पुण्य के मार्ग में ऊपर उठाने के लिए और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चारों का संपादन करने के लिए शास्त्र के अनुसार दीक्षा ही एक परम साधन है। आजकल दीक्षा लेने का चलन बहुत कम हो गया है और बहुत थोड़े बालकों को शास्त्र के अनुसार गायत्री की दीक्षा दी जाती है। मालवीय जी का विचार है कि प्रत्येक मनुष्य को अपने धर्म के पालन के लिए भक्ति, नाम-स्मरण, कीर्तन, भजन, व्रत, उपवास आदि का पालन करना चाहिए। उनके अनुसार, प्रत्येक मनुष्य का महत्व है और वह उसमें शारीरिक, चारित्रिक एवं आत्मिक बल की वृद्धि करना चाहता है। जिससे कि वह अपना और अपने समाज का कल्याण कर सके। इस कार्य के लिए वह प्रत्येक नर-नारी में सदाचार, आत्मविश्वास, त्याग, सेवा, परोपकार, अहिंसा, परिश्रम एवं कर्तव्यपरायणता का गुण देखना चाहते थे।

(4) जगत ईश्वर — जगत-ईश्वर के संबंध में विचार प्रकट करते हुए मालवीय जी ने लिखा है कि, वह सृष्टिकर्ता है, सारा जगत उसके द्वारा रचा गया है। इससे यह तो स्पष्ट है कि वह इस जगत को यथार्थ मानते थे। दूसरी ओर, मनुष्य जाति में उन्होंने चार वर्ण माने हैं, यह भी एक परंपरावादी विश्वास है। मालवीय जी वर्णों का विभाजन तो मानते थे, लेकिन जातियों में मेल, सौहार्द एवं भ्रातृता की भावना रखना पसंद करते थे। यही कारण था कि वे ईसाई, मुसलमान तथा हिन्दुओं में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र सभी को समदृष्टि से देखते थे। वास्तव में, जगत में ये सब एक ही पिता की संतान हैं, सभी को एक साथ मिलकर अपना-अपना कर्म करना चाहिए, यही वे चाहते थे।

मालवीय जी का दार्शनिक विचार व्यापक हिन्दू धर्म पर आधारित था जो वह प्रत्येक जाति, समाज एवं राष्ट्र के प्रत्येक सदस्य में देखना चाहते थे। जिस व्यक्ति में आत्म और पर की भावना का एकीकरण होता है, वही व्यक्ति जाति, समाज और राष्ट्र का सच्चा सेवक है। इसलिए उन्होंने सेवा को सबसे बड़ा कर्म और धर्म कहा है। इसके अतिरिक्त मालवीय जी के दार्शनिक विचार पूर्णतया आदर्शवादी थे। वह

धर्मार्थ, काम, मोक्ष का आदर्श सामने रखते थे और इन विचारों की प्राप्ति करना जीवन का लक्ष्य मानते थे। इस विचार से उनके दर्शन की ओर देखने से ज्ञात होता है कि उन पर आधुनिक पश्चिमी विचारधाराओं का प्रभाव नहीं था, यही कारण है कि उनके विचारों में प्रकृतिवाद, यथार्थवाद एवं प्रयोगवाद की झलक यदा-कदा कहीं मिल जाए, लेकिन इनका समावेश नहीं है। आदर्शवादी होते हुए भी वे जगत को माया या प्रपंच नहीं मानते थे, प्रत्युत वह ठोस अस्तित्व वाला एवं कर्म-क्षेत्र मानते थे, अतः उनका आदर्शवाद एक प्रकार का विज्ञानवादी एवं कर्मवादी आदर्शवाद कहा जा सकता है। वास्तव में, वह एक कर्मकांडी ब्राह्मण के पुत्र थे तथा उनके सामने था — माहात्म्यं वासुदेवस्य हरेद्‌भुत कर्मणः। तमेव शरणं गच्छ यदि श्रेयोभिवांछति। कृष्ण जैसे कर्मठ उनके आदर्श थे और 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' ही उनका आदर्शवाद था।

शिक्षा संबंधी विचार

1. शिक्षा का अर्थ — मालवीय जी ने शिक्षा की कोई परिभाषा नहीं दी है। एक स्थान पर उन्होंने कहा है कि 'शिक्षा से मेरा मतलब विद्यालय में दी जाने वाली शिक्षा है।' इस विचार से उन्होंने शिक्षा के संकुचित अर्थ की ओर संकेत किया है। शिक्षा के अंतर्गत उन्होंने एक ओर धर्म एवं आध्यात्म ज्ञान को लिया है, जहाँ सर्वोच्च सत्य लौकिक एवं परालौकिक दृष्टि से प्राप्त किया जाता है तो दूसरी ओर चरित्र की शिक्षा, शारीरिक उत्कर्ष की शिक्षा तथा देश एवं राष्ट्र के लिए त्याग की शिक्षा की ओर संकेत मिलता है। शिक्षा को उन्होंने अन्य शिक्षाशास्त्रियों के समान प्रक्रिया के रूप में नहीं समझा है, बल्कि उसको विषय-वस्तु के रूप में ही लिया है। यह बात स्पष्ट है कि उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में शिक्षा-योजना बनाते समय ये विषय सामने रखें जिनकी शिक्षा-व्यवस्था उन्होंने विश्वविद्यालय के विभागों द्वारा कराई। वेद-वेदांग, स्मृति, दर्शन, इतिहास, पुराण एवं ज्योतिष, आयुर्वेद, स्थापत्यवेद, अर्थशास्त्र, विज्ञान, इंजीनियरिंग, शिल्प, कृषि, संगीत, कला, भाषाशास्त्र, इन विषयों के अध्ययन-अध्यापन के लिए उन्होंने ज़ोर दिया है। इससे स्पष्ट है कि वह शिक्षा का अर्थ विषय का ज्ञान मानते थे जिसे 'विद्या' कहा जाता है। शिक्षा को मालवीय जी ने इस प्रकार ज्ञान-प्राप्ति का साधन भी कहा है, जिससे मनुष्य अपने में विभिन्न शक्तियों एवं गुणों की अभिवृद्धि करता है। अतएव, प्राचीन एवं नवीन दृष्टिकोणों को मिलाकर उन्होंने शिक्षा का अर्थ लगाया है।

(i) सांस्कृतिक शिक्षा — मालवीय जी के ध्यान में सांस्कृतिक शिक्षा का भी विचार मिलता है। एक हिन्दू होने के नाते उनका कहना है कि जब बालक पांचवे वर्ष में जाए तो विद्यारंभ हो। इसके बाद वर्णमाला का ज्ञान देकर उसे धर्म की पुस्तकें पढ़ाई जाएँ। इस प्रकार के ज्ञान के साथ स्वास्थ्य की शिक्षा भी दी जाए, क्योंकि 'धर्मार्थकाममोक्षाणामरोग्यं मूलकारणम्।' अब यह स्पष्ट हो जाता है कि मालवीय जी शिक्षा का अर्थ व्यक्ति में धार्मिक, बौद्धिक, आर्थिक एवं शारीरिक संस्कारों का विकास करना मानते थे। मालवीय जी ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की विचारणीय योजना बनाकर विभिन्न प्रकार की शिक्षा पर ज़ोर दिया, यह स्पष्ट है। उनका विचार है कि संस्कृत साहित्य के

समस्त अंगों विशेषतः वेद-वेदांग, उपवेद, कल्पसूत्र, धर्मशास्त्र, इतिहास, पुराण तथा हिन्दू राजनीति के मूल विषयों की शिक्षा दी जाए। इस प्रकार भारतीय धर्म, संस्कृति, धर्मग्रंथों और अध्यात्म-शास्त्र तथा दर्शन के अध्ययन के लिए मालवीय जी संस्कृत भाषा की शिक्षा अत्यंत उपयोगी बताते हैं।

(ii) विज्ञानों तथा कौशलों की शिक्षा — मालवीय जी के विचार में आधुनिक युग की प्रगति स्थिति के अनुसार अत्यंत आवश्यक है। उपवेदों में आयुर्वेद का विशेष महत्व है, इसलिए इसके अंतर्गत प्राचीन एवं नवीन ढंग की चिकित्सा प्रणाली का ज्ञान दिया जाए। चिकित्साशास्त्र के अलावा शरीर-विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, गणित एवं ज्योतिष विज्ञान की भी शिक्षा दी जाए। अन्वेषण एवं प्रयोगात्मक कार्यों के लिए विशेष ध्यान दिया जाए। जिसे आज टेक्नालॉजी का नाम दिया गया है, उसे ही मालवीय जी शिल्प और कौशल मानते हैं।

(iii) कृषि की शिक्षा — मालवीय जी का विचार था कि, 'भारत कृषि-प्रधान देश है। कृषि की उत्पत्ति के लिए विश्वविद्यालयों में कृषि-संबंधी शिक्षा भी दी जाए, जिसकी सहायता से पाश्चात्य देशों में भूमि में अधिक फ़सलें उगाई जाती हैं तथा अधिक परिणाम और गुण वाले फल तथा अन्न उपजाए जाते हैं।' आज स्वतंत्र भारत में अन्न संकट की जो दशा है, उसके लिए भविष्य दृष्टा मालवीय जी ने पहले ही विचार किया था। कृषि की शिक्षा नवीन ढंग की हो और उसमें अन्वेषण एवं शोध हो। इसके व्यावहारिक एवं प्रयोगात्मक रूप पर ज़ोर दिया जाए, ऐसा उनका मानना था।

(iv) गंधर्व तथा ललित कलाओं की शिक्षा — मालवीय जी भारतीय गंधर्व कला एवं चित्रकला, वास्तुकला, अभिनय कला आदि को पुनर्जीवित करना चाहते थे, जिससे 'संस्कृति' का पुनर्निर्माण एवं पुनर्विकास हो तथा राष्ट्र का जीवन तथा राष्ट्र के व्यक्ति का जीवन समृद्ध हो, क्योंकि वे प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता तथा वैभव के अनन्य भक्त एवं पोषक थे।

(v) चरित्र-निर्माण की शिक्षा — शिक्षा के दो लक्ष्य मालवीय जी ने बताए हैं — धर्म का विश्वास एवं चरित्र का विकास। इसीलिए वे अपने सभी छात्रों से यही कहते थे कि चरित्र ऊँचा उठाओ, ब्रह्मचर्य का पालन करो। उन्होंने लिखा कि 'ब्रह्मचर्याश्रम' के जिन विद्यार्थियों के चरित्र निष्कलंक पाए जाएँगे तथा जो निश्चित पाठ्यक्रम समाप्त कर लेंगे, वे स्नातक पद पाने के अधिकारी समझे जाएँगे।

(vi) प्राइमरी तथा अन्य स्तर की शिक्षा — मालवीय जी का ध्यान देश की सभी स्तरों की शिक्षा पर था। प्राइमरी शिक्षा पर एक बार बोलते हुए उन्होंने कहा था कि, 'भारतवर्ष भर में प्रारम्भिक शिक्षा की क्या व्यवस्था है और हमें उसकी उन्नति तथा उनके प्रचार के लिए क्या-क्या उपाय करने चाहिए।' इससे स्पष्ट है कि उनका ध्यान केवल विश्वविद्यालय स्थापित करके उस स्तर की शिक्षा के विकास की ओर ही नहीं था, बल्कि प्राइमरी, सेकेंड्री शिक्षा की ओर भी था।

2. शिक्षा के उद्देश्य — शिक्षा और जीवन में अटूट संबंध है ऐसा विचार मालवीय जी का था। उनके अनुसार जीवन का उद्देश्य हिन्दूशास्त्रों के अनुसार

मुख्यतः ये हैं — धार्मिक कर्तव्यों का पालन करना (धर्म), धन की प्राप्ति करना (अर्थ), आनंद का उपभोग करना (काम), तथा अंत में मोक्ष प्राप्त करना (मोक्ष)। वे व्यक्ति के सभी पक्षों ज्ञानात्मक, भावात्मक, क्रियात्मक का विकास करना शिक्षा का उद्देश्य मानते हैं। वे केवल धर्म के संकुचित विचारों एवं संस्कारों की शिक्षा देना ही इति नहीं समझते हैं, बल्कि उसके लिए व्यक्ति में चरित्रबल, शरीरबल एवं ज्ञानबल भी आवश्यक समझते हैं, इन्हीं के आधार पर व्यक्ति को सच्ची अनुभूति तथा अनुभूति की व्यवहार में परिणति एवं अंत में मुक्ति होती है, यही तो गीता का आप्त वचन है — यतोऽयुदय निःश्रेयासिद्धिः स धर्मः। मालवीय जी शिक्षा के उद्देश्य के रूप में नैतिकता के विकास को महत्व देते थे। नैतिकता को विद्यार्थियों का आवश्यक गुण मानते थे। उनका विचार था कि समाज के सभी व्यक्ति आचारवान और चरित्रवान हों। वे अपने कर्तव्य पालन में सावधान रहें और धर्म की रक्षा करें। विद्यापार्जन और तपोमय जीवन को वे मनुष्य के लिए आवश्यक मानते थे। उनका विचार था कि जो व्यक्ति विद्या और तप से हीन होता है वह कालांतर में दुराचारी हो जाता है।[3]

3. पाठ्यक्रम — मालवीय जी के द्वारा कोई पाठ्यक्रम की योजना श्रेणियों के अनुसार नहीं दी गई है, लेकिन इतना तो निश्चित रूप में कहा जाता है कि उन्होंने विश्वविद्यालय में जिन विभागों को स्थापित करने की योजना तैयार की थी, वह बहुत व्यापक है और विभिन्न है। उनका मानना था कि पाठ्यक्रम का आधार देश एवं समाज की संस्कृति एवं जीवन दर्शन हो। इसलिए उन्होंने संस्कृति का अध्ययन अनिवार्य कराया तथा धर्म की शिक्षा पर अत्यधिक ज़ोर दिया। कलात्मक विषयों को पाठ्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान दिया। बौद्धिक विकास के आधार पर पाठ्यक्रम में भाषाओं का अध्ययन करने के लिए कहा। उन्होंने कहा कि अंग्रेज़ी तथा अन्य विदेशी भाषाएँ इस उद्देश्य से पढ़ाई जाएँ कि भारतीय साहित्य, विज्ञान तथा भाषा में उनसे भली प्रकार सहायता मिल सके। पाठ्यक्रम के विषयों को उपयोगिता के आधार पर संगठित किया जाए। उन्होंने बताया कि शिल्प विद्यालय में विद्यार्थियों को धनोपार्जन की शिक्षा दी जाएगी। कौशल एवं उद्योग के विषय, चिकित्सा, कानून, अध्यापन के विषय जो व्यावसायिक हैं, यही सिद्ध करते हैं कि पाठ्यक्रम का आधार उपयोगिता का होना चाहिए। मालवीय जी ने देश की आवश्यकतानुसार एवं विदेशों से तुलना करके उपर्युक्त विषयों को पाठ्यक्रम में रखने का विचार बताया है। उनके द्वारा अनुमोदित विषयों में विभिन्नता एवं रुचि के सिद्धांतों की भी झलक मिलती है। पाठ्यक्रम में केवल विषय ही नहीं, बल्कि क्रियाएँ भी शामिल थीं।

मालवीय जी का पाठ्यक्रम साहित्यिक, नैतिक एवं सौंदर्यपरक प्रत्ययों को अधिक महत्व प्रदान करता है। मालवीय जी की कल्पना का पाठ्यक्रम विस्तृत है। उन्होंने अपने विश्वविद्यालय में बड़े विस्तृत पाठ्यक्रम की योजना बनाई।[4]

4. शिक्षा की विधि — उन्होंने अपनी कोई निजी शिक्षा-विधि की रचना नहीं की। यत्र-तत्र उनके द्वारा दिए गए दीक्षांत भाषण, वक्तव्य एवं उपदेश से स्पष्ट होता है कि वे शिक्षा की प्राचीन परंपरावादी विधियों

के पक्ष में थे। मालवीय जी एक आदर्शवादी एवं धर्मपरायण अध्यापक थे, इसलिए वह विद्यार्थियों को ब्रह्मचर्य पालन के लिए उत्तेजित करते थे तथा उपदेश देते थे। वे उपदेश एवं भाषण की विधि के द्वारा भी शिक्षा के लिए कहते हैं। सारा जीवन उन्होंने व्याख्यान दिया और लोगों को उपदेश दिया। अस्तु स्पष्ट है कि इन विधियों के द्वारा पूर्णरूप से और अच्छे ढंग से शिक्षा दी जा सकती है, विशेषकर विश्वविद्यालय स्तर पर। इनके अलावा, मालवीय जी के अनुसार क्रिया-विधि एवं अभ्यास-विधि का भी प्रयोग होना चाहिए। उन्होंने एक बार विद्यार्थियों से कहा था कि कठोर काम में अनवरत लगे रहने का अभ्यास डालो। दूसरी ओर, मालवीय जी उच्च स्तर पर शोध एवं अन्वेषण के पक्ष में थे। इस कार्य के लिए उन्होंने स्वाध्ययनशील विधि के प्रयोग पर ज़ोर दिया। उन्होंने कहा था कि, 'पढ़ते समय सारी दुनिया को एक ओर रख दो और पुस्तकों में लेखक की विचारधारा में डूब जाओ। यह तुम्हारी समाधि है, यही तुम्हारी उपासना है और यही तुम्हारी पूजा है।' अन्त में प्रयोग-विधि के विषय में भी उनके विचार मिलते हैं, जिसका प्रयोग विज्ञान, कला एवं कौशल-उद्योग जैसे विषयों की शिक्षा के लिए अनिवार्य है, जैसे — निरीक्षण-विधि, कर्मशाला-विधि यह भी प्रयोग-विधि के साथ सम्मिलित है।

5. शिक्षक, शिक्षार्थी और शिक्षालय — मालवीय जी अपने शिक्षकों के प्रति बहुत श्रद्धा रखते थे। यह भावना वह प्रत्येक अध्यापक के प्रति विद्यार्थियों में चाहते थे, उनका विचार है कि माता के समान कोई शिक्षक नहीं है, वह प्रथम शिक्षिका है। अतएव, माता शिक्षिका के रूप में अपने पुत्र-पुत्रियों को राष्ट्र की योग्य संतान के रूप में बढ़ाए। माता के बाद शिक्षक (विद्यालय का अध्यापक) है जो राष्ट्र का पूरा भार रखता है विशेषकर भारतवर्ष में, जहाँ कि अधिकांश जनता अशिक्षित है। उन्होंने कहा कि, 'मैं अध्यापकों के लिए बहुत माँग रहा हूँ। प्रायः सभी सभ्य देशों में, देश के राष्ट्रीय उत्थान में अध्यापक का स्थान बहुत उच्च माना जाता है।'

विद्यार्थी को भी मालवीय जी आदर्श रूप में बनाना चाहते थे। वह विद्यार्थियों से कहते थे कि, 'ब्रह्मचर्य का आजीवन पालन करो, सवेरे-शाम-संध्या करो, ईश्वर से प्रार्थना करो, माता-पिता-गुरु तथा प्राणी मात्र की सेवा करो, सत्य बोलो, व्यायाम करो, विद्या पढ़ो, देश सेवा करो अर्थात् जगत में सम्मान प्राप्त करो।' विद्यार्थियों को वह अपने दैनिक कार्यों को अंकित करने के लिए कहते थे, जिससे वे आत्म-सुधार कर सकें। शास्त्र और शस्त्र, बुद्धि, बल और बाहुबल, दोनों का उपार्जन करो। सादा जीवन और उच्च विचार का आदर्श न भूलो। स्त्री जाति का आदर करो। मन को विमल बना लो, आत्मा को शुद्ध कर लो। संसार में जहाँ जाओगे, वहाँ मान के अधिकारी होंगे। इस उद्धरण से शिक्षार्थी के प्रति मालवीय जी के आदर्शवादी विचार स्पष्ट होते हैं।

शिक्षालय के संबंध में भी उनके विचार स्पष्ट मिलते हैं। विद्यालय की तुलना भारतीय विचारधारा में तपोवन से की गई है। शिक्षालय का वातावरण प्रकृति की सुरभ्यता एवं सौरभता से पूरिपूरित हो, शांत एवं पवित्र हो और हृदय, मन एवं आत्मा को बल देने वाला हो। शिक्षालय का एक और वातावरण

विद्या-संबंधी एवं सामाजिक होता है जो वहाँ के छात्रों एवं अध्यापकों के व्यवहार से निर्मित होता है। मालवीय जी ने अपने एक दीक्षांत भाषण में संकेत किया था कि, 'मैं यह भी आशा करता हूँ कि आप सब लोग मिलकर भगवान से यह प्रार्थना करेंगें कि ये विद्या-मन्दिर अधिक संख्या में विशेष करके भारतीय जनता में नवज्योति और नव-जीवन संचार के साधन बनें तथा संसार के अन्य राष्ट्रों के सामने भारत के लुप्त गौरव का पुनरुत्थान करें। इससे स्पष्ट है कि मालवीय जी शिक्षालय को समाज एवं राष्ट्र के नवजागरण का साधन बनाना चाहते थे, जैसा कि आज के युग में सभी जनतांत्रिक देशों में हो रहा है।[5]

6. अनुशासन संबंधी विचार — मालवीय जी प्राचीन परंपरा को मानने वाले थे, अतः अनुशासन स्थापित करने के पक्ष में थे। ब्रह्मचर्य में अनुशासन एवं नियंत्रण होता है। परंतु इस प्रकार का अनुशासन अंतःप्रेरित होता है।

7. शिक्षा का माध्यम — मालवीय जी महान देशभक्त और अपनी भारतीय संस्कृति, भाषा और साहित्य के अनुरागी थे। इसी कारण उन्होंने हिन्दू, हिंदी और हिन्दुस्तान के उन्नयन हेतु आजीवन प्रयास किया। हिंदी साहित्य सम्मेलन में भाषण देते हुए उन्होंने कहा था कि, "हिंदी हिन्दुस्तान की भाषा है, इसकी उन्नति हमारा परम कर्तव्य है।"[6] हिन्दुस्तान की हिंदी भाषा के लिए मालवीय जी ने ज़ोर दिया था और उनका नारा था, 'हिंदी, हिन्दू, हिन्दुस्तान।' हिंदी से भारत के अधिकांश लोग परिचित कहे जाते हैं। ऐसी दशा में शिक्षा का माध्यम मातृभाषा को बनाया जाना चाहिए और शिक्षा का माध्यम सार्वजनिक विषयों के लिए देश की कोई उपभाषा होना चाहिए। यह प्रस्ताव किया गया कि वह उपभाषा 'हिंदी हो, क्योंकि देश में सबसे अधिक यही बोली तथा लिखी जाती है।' परंतु हिंदी के माध्यम से प्राइमरी एवं सेकेंड्री शिक्षा का काम तो चल सकता था, लेकिन उच्च एवं विश्वविद्यालयी शिक्षा के लिए हिंदी को माध्यम बनाने में कठिनाई महसूस हो रही थी। इसलिए, यह निश्चित हुआ कि विश्वविद्यालय की शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी रखा जाए, पर मातृभाषा के विकास के साथ विश्वविद्यालय को अधिकार रहेगा कि वह किसी एक अथवा अधिक विषयों की शिक्षा का माध्यम हिंदी कर दे। इस प्रकार, मालवीय जी के विचार में उपयोगिता एवं व्यावहारिता के विचार से तथा सरलता एवं स्पष्टता के विचार से क्रमशः अंग्रेज़ी और हिंदी, दोनों को शिक्षा का माध्यम घोषित किया जाए और प्रयोग किया जाए।

उपसंहार

'भारत को अभिमान तुम्हारा, तुम भारत के अभिमानी।
पूज्य पुरोहित थे हम सबके, रहे सदैव समाधानी।।
तुम्हें कुशल याचक कहते हैं, किन्तु कौन तुम सा दानी।
अक्षय शिक्षा-सत्र तुम्हारा, हे ब्राह्मण, ब्रह्मज्ञानी।।'

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की उक्त कविता मालवीय जी के व्यक्तित्व को समर्पित है। मालवीय जी का सबसे बड़ा योगदान धर्म, विशेषकर हिन्दू

धर्म का पुनर्स्थापन था। भारतवर्ष में धर्म की प्रधानता सदैव से रही है और जीवन तथा शिक्षा के क्षेत्र में धर्म का स्थान अधिक रहा है। फलस्वरूप जीवन एवं शिक्षा एक वृत्त में थे और शिक्षा की सारी संरचना धर्म के आधार पर हुई। शिक्षा का पाठ्यक्रम वेद, वेदांग, स्मृति, पुराण आदि रहे और शिक्षक धर्मनिष्ठ वनसेवी आचार्य थे। इसी परंपरा को पुनः अधिष्ठापित करने का प्रयत्न मालवीय जी ने किया और उन्हें सफ़लता भी मिली।

शिक्षा में मालवीय जी का दूसरा योगदान राष्ट्र के सभी वर्णों के लिए शिक्षा योजना एवं विद्यालय स्थापित करना है। उनका विचार था कि किसी देश के शासन में राष्ट्रीय शिक्षा का प्रश्न देश की सबसे बड़ी समस्या है। इस समस्या को हल करने के लिए उन्होंने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं नर-नारी सभी के लिए शिक्षा-व्यवस्था की और उन्हें सर्वोत्तम ढंग की शिक्षा देने के लिए कहा। मालवीय जी का तीसरा योगदान शिक्षा के क्षेत्र में प्राचीन एवं आधुनिक शिक्षा-प्रणालियों का मेल कहा जाता है, जिससे भारतीयता नष्ट नहीं हुई, बल्कि उसने पश्चिमी शिक्षा की विशेषताओं को आत्मसात् किया। उन्होंने कहा था कि, 'यह कहने की आवश्यकता नहीं कि भारतवर्ष में प्रचलित वर्तमान शिक्षा-प्रणाली हमारी राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक आवश्यकताओं के लिए पूर्णतः अनुपयुक्त है। हम लोग अंधविश्वास की तरह एक ऐसी प्रणाली का अनुसरण करते हुए चले जा रहे हैं जिसका निर्माण अन्य जातियों के लिए हुआ था और जिसका उन लोगों ने बहुत दिन पहले परित्याग कर दिया था। इसलिए यह आवश्यक है कि समयानुसार शिक्षा-प्रणाली बनाई जाए।' मालवीय जी ने यह अनुभव किया कि देश की वर्तमान परिस्थिति में एकमात्र धर्म की शिक्षा नहीं होनी चाहिए, अपितु इसके साथ विज्ञान, टेक्नोलॉजी, उद्योग, कृषि आदि की शिक्षा भी दी जाए और इसकी व्यवस्था पूरी तरह से उन्होंने विश्वविद्यालय में की।

चौथा योगदान मालवीय जी के राष्ट्रभाषा, मातृभाषा, संस्कृत एवं अंग्रेज़ी भाषा के प्रयोग एवं अध्ययन पर बल देने में पाया जाता है। सांस्कृतिक एवं धार्मिक दृष्टि से संस्कृत भाषा का अध्ययन उन्होंने अनिवार्य बताया। शिक्षा को जनसाधारण में प्रचार के लिए मातृभाषा हिंदी, उर्दू, बांग्ला, मराठी आदि को माध्यम बनाने को कहा। अंग्रेज़ी के विषय में उन्होंने कहा कि, 'हमें अंग्रेज़ी भाषा की शिक्षा को गौण भाषा मानकर इसे पढ़ने के लिए उत्साहित होना चाहिए।' राष्ट्रभाषा के विषय में मालवीय जी हिंदी के पक्ष में विचार रखते थे। हिंदी, हिन्दुस्तान की भाषा है और इसकी उन्नति हमारा कर्तव्य है। आज हिंदी के प्रचार के लिए तो हिंदी निदेशालय ही स्थापित हो गया है और केंद्रीय प्रशासन का एक अंग है। अस्तु इसका श्रेय मालवीय जी को ही जाता है। अंत में पाँचवाँ सबसे बड़ा योगदान बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना है। उनके ही शब्दों में 'विश्वविद्यालय की स्थापना इसे एक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय मानकर हुई थी और इसने सभी प्रकार से अक्षरशः इस ध्येय को प्राप्त किया है।' यह बात उस समय सत्य थी, आज यह सत्य और भी व्यापक हो गया है, वस्तुतः एशिया में तो बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय सर्वप्रमुख माना गया है।

मालवीय जी भारत के एक महान मनीषी थे। वे एक दृढ़-निश्चयी व्यक्ति थे। उन्होंने राजनीति एवं शिक्षा दोनों क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इस तरह से हम यह कह सकते हैं कि मालवीय जी के शिक्षा-दर्शन संबंधी विचार आज भी प्रासंगिक हैं और भविष्य में भी रहेंगे।

टिप्पणी

[1]पाल एवं गुप्त. 2011. *महान् पाश्तात्य एवं भारतीय शिक्षाशास्त्री.* कैलाश प्रकाशन, इलाहाबाद. प्रथम संस्करण. पृ. 91

[2] ____. वही ____. पृ. 85.

[3]मालवीय, राजीव. 2011. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक.* शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद. प्रथम संस्करण. पृ. 317.

[4]दूबे, मनीष और विभा दूबे. 2010. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक.* शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद. प्रथम संस्करण. पृ. 340.

[5]पाण्डेय, रामशकल. 2007 *विश्व के श्रेष्ठ शिक्षा-शास्त्री.* विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2. दशम् संस्करण. पृ.सं. 340.

[6]मालवीय, राजीव. 2011. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक.* शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद. प्रथम संस्करण. पृ. 319.